प्रकाशन हेतु अनुमोदित

छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय : बिलासपुर

एकलपीठ : माननीय श्री मनीन्द्र मोहन श्रीवास्तव, न्यायमूर्ति

रिट याचिका (सेवा) क्र. 5257/2008

याचिकाकर्ता अब्दुल सबन खान

विरूद्घ

उत्तरवादीगण छत्तीसगढ़ राज्य व अन्य

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत रिट याचिका

उपस्थित- श्री संदीप दुबे, याचिकाकर्ता हेतु अधिवक्ता

श्री अरूण साव, उत्तरवादीगण हेतु शासकीय अधिवक्ता

मौखिक आदेश

(दिनाँक 11 सितम्बर 2012 को पारित)

पक्षकारों की सहमति से अंतिम रूप से सुना गया।

2. याचिका के लंबित रहने के दौरान हुए घटनाक्रमों के आलोक में, इस न्यायालय द्वारा अवधारित किया जाने वाला एकमात्र विवाद्यक यह है कि क्या उत्तरवादी, इस याचिका में आक्षेप अनुलग्नक पी/8 के माध्यम से, याचिकाकर्ता की सेवानिवृत्ति पर देय उपदान की राशि में से 96,029/- रुपये की राशि को आदेशित एवं समायोजित कर सकता था।

3. संक्षिप्त विवाद के निर्धारण हेतु सारगर्भित तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता ने छत्तीसगढ़ राज्य के सिंचाई विभाग (जल संसाधन) में उप-अभियंता के रूप में कार्य किया तथा दि. 31/03/05 को अधिवार्षिकी की आयु प्राप्त करने पर सेवानिवृत्त हुआ। समस्त देयों के निपटान की प्रक्रिया में, याचिकाकर्ता ने 'अदेय प्रमाणपत्र' जारी करने हेतु एक आवेदन (अनुलग्नक पी/2) दि. 15/03/05 को प्रस्तुत किया। लगभग पांच माह पश्चात, याचिकाकर्ता ने दि. 12/09/05 को समस्त सेवानिवृत्ति लाभों तथा पेंशन के निपटान एवं भुगतान हेतु एक अन्य आवेदन (अनुलग्नक पी/3) प्रस्तुत किया। इस स्तर पर, याचिकाकर्ता को दि. 22/09/05 को आक्षेपित ज्ञापन जारी किया गया, जिसमें उसे सूचित किया गया कि 96,029/- रुपये की राशि "विविध अग्रिम" मद के अंतर्गत वसूली योग्य है। उपरोक्त ज्ञापन के माध्यम से, याचिकाकर्ता से उक्त राशि को उसकी सेवानिवृत्ति पर देय अवकाश नगदीकरण लाभों से समायोजित करने हेतु सहमति मांगी गई थी। हालांकि, याचिकाकर्ता ने अपने प्रत्युत्तर (अनुलग्नक पी/4)

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

दिनांक 27/09/05 के माध्यम से वसूली के प्रति किसी भी दायित्व से इनकार करते हुए उसे विवादित ठहराया। यह ध्यान देना सुसंगत है कि इससे पूर्व भी, याचिकाकर्ता ने सेवानिवृत्ति लाभों के भुगतान हेतु अनुलग्नक पी/3 के माध्यम से आवेदन प्रस्तुत किया था, जिसमें उसने यह उल्लेख किया था कि विविध अग्रिम के विरुद्ध वसूली से संबंधित किसी भी लंबित मामले का निराकरण किया जाए।

ऐसा प्रतीत होता है कि दि. 10/04/05 को, म.प्र. सिविल सेवा (पेंशन) नियम, 1976 (संक्षेप में '1976 के नियम') के नियम 66 के संदर्भ में, याचिकाकर्ता से प्रारूप 26 में एक वचनबंध (अनुलग्नक आर/3) लिया गया था और उसी आधार पर, यह मान लिया गया था कि याचिकाकर्ता ने वसूली के लिए अपनी सहमति दे दी है। इसलिए, याचिकाकर्ता का मामला दि. 24/07/06 के ज्ञापन (अनुलग्नक पी/5) के माध्यम से अग्रेषित किया गया था, जिसमें अन्य दस्तावेजों के साथ-साथ वसूली हेतु दिया गया वचनबंध भी सम्मिलित था। जब याचिकाकर्ता को इस बारे में पता चला, तो उसने दि. 22/09/06 को यह बताते हुए अभ्यावेदन प्रस्तुत किया कि उसने वसूली के लिए ऐसा कोई वचनबंध नहीं दिया है। इस प्रकार, याचिकाकर्ता का मामला लंबित रहा और सेवानिवृत्ति देयकों का भुगतान न होने से व्यथित होकर याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय के समक्ष याचिका प्रस्तुत की, जो रिट याचिका (सेवा) क्रमांक 6166/06 के रूप में पंजीकृत है, जिसमें दिनांक 22/09/05 के अनुलग्नक पी/1 से व्यथित होकर

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

प्रस्तुत की गई थी। जब याचिका लंबित थी, तब याचिकाकर्ता को ज्ञात हुआ कि कथित देय और वसूली योग्य राशि की वसूली, याचिकाकर्ता को देय उपदान की राशि में से समायोजित करके पहले ही की जा चुकी है। जब यह तथ्य न्यायालय के संज्ञान में लाया गया, तो उक्त रिट याचिका को निष्क्षुत्प्रभावी हो जाने के आधार पर इस स्वतंत्रता के साथ खारिज कर दिया गया कि याचिकाकर्ता परिणामी आदेश को चुनौती दे सकता है। तत्पश्चात, याचिकाकर्ता द्वारा यह वर्तमान रिट याचिका प्रस्तुत की गई है।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

4. तथाकथित सूचना (अनुलग्नक पी/1) दि. 22/09/05 और ज्ञापन (अनुलग्नक पी /8) दि. 15/09/08, जिसके द्वारा उपदान के विरुद्ध समायोजन किया गया है, की शुद्धता और वैधता को चुनौती देने हेतु, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि आक्षेपित कार्यवाही, नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन के साथ-साथ 1976 के नियमों के नियम 9 में निहित प्रावधानों का भी उल्लंघन है। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, चूंकि याचिकाकर्ता पहले ही शासकीय सेवा से सेवानिवृत्त हो चुका था, इसलिए उक्त राशि की वसूली केवल राज्यपाल के प्राधिकार के अधीन 1976 के नियमों के नियम 9 में निर्धारित रीति से जाँच आयोजित करके ही की जा सकती थी। उनके अभिवचन के अनुसार, न तो उन्हें कोई आरोप-पत्र जारी किया गया और न ही कोई जाँच आयोजित की गई। अतः, कदाचार का कोई

निष्कर्ष न होने के अभाव में, विविध अग्रिम के विरुद्ध देय राशि के बहाने याचिकाकर्ता से कोई वसूली नहीं की जा सकती थी। उनका आगे यह भी तर्क है कि किसी भी स्थिति में, जब याचिकाकर्ता ने विविध अग्रिमों के विरुद्ध वसूली सहित किसी भी वसूली के प्रति अपने दायित्व को स्वीकार नहीं किया था, तो नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों ने उत्तरवादीगण को इस बात के लिए बाध्य किया था कि वे प्रस्तावित वसूली के विरुद्ध याचिकाकर्ता की सुनवाई करें और उसके पश्चात ही याचिकाकर्ता को देय सेवानिवृत्ति लाभों के विरुद्ध समायोजन करें। अपने तर्क के समर्थन में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता इस न्यायालय द्वारा **गौस अली बेग विरूद्घ छत्तीसगढ़ राज्य एवं अन्य, 2012 लॉ-सूट (छ.ग.) 163** के मामले में दिए गए निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया है।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

5. दूसरी ओर, विद्वान शासकीय अधिवक्ता श्री साव, रिट याचिका में की गई प्रार्थना का विरोध करते हैं। उनका तर्क है कि वर्तमान मामला ऐसा नहीं है जहाँ राज्य ने शासन को वित्तीय हानि पहुँचाने वाले कदाचार के किसी भी आरोप पर वसूली करने का प्रस्ताव दिया हो। अतः , ऐसे मामलों में, जहाँ किसी कदाचार के आरोप में विभागीय जाँच का अनुध्यान नहीं है, बल्कि केवल 1976 के नियमों के नियम 65 के तहत वसूली का मामला है, और वसूली की प्रकृति 'विविध अग्रिमों' के विरुद्ध है, वहाँ 1976 के नियमों का नियम 9 लागू नहीं होगा। उनके तर्क के अनुसार, याचिकाकर्ता की सेवानिवृत्ति के समय, सेवा अभिलेखों के आधार पर यह पाया गया कि विभिन्न

समय पर याचिकाकर्ता को कई विविध अग्रिम दिए गए थे और चूंकि उनका उचित लेखा-जोखा नहीं दिया गया था, इसलिए उन विविध अग्रिमों के विरुद्ध याचिकाकर्ता से कुछ वसूलियां बकाया पाई गईं। नियम 65 शासन को अदेय प्रमाण पत्र जारी करने से पूर्व ऐसी वसूली करने के लिए अधिकृत और सशक्त करता है। केवल तभी जब राशि के समायोजन द्वारा ऐसा प्रमाण पत्र जारी कर दिया जाता है, याचिकाकर्ता को सेवानिवृत्ति देयकों के भुगतान किए जा सकेंगे। उनका आगे यह भी तर्क है कि चूंकि देय राशियाँ 'विविध अग्रिमों' के विरुद्ध वसूली योग्य हैं, इसलिए यह याचिकाकर्ता की पूर्ण जानकारी और संज्ञान में है। अतः , सुनवाई का कोई अवसर प्रदान किया जाना आवश्यक नहीं है , विशेषकर तब, जब 1976 के नियमों के नियम 65 या नियम 66 के तहत ऐसा कोई प्रावधान नहीं है। उन्होंने तर्क किया कि याचिकाकर्ता की सेवानिवृत्ति पर देय और बकाया पाए गए पेंशन लाभों के शीघ्र निपटान और भुगतान की सुविधा हेतु ही याचिकाकर्ता के उपदान के विरुद्ध यह समायोजन किया गया है।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

6. जहाँ तक पहले तर्क का प्रश्न है कि किसी भी वसूली का आदेश देने से पूर्व 1976 के नियमों के नियम 9 के तहत जाँच की जानी चाहिए थी, मैं इसे स्वीकार करने में असमर्थ हूँ। वर्तमान मामला ऐसा नहीं है जहाँ कदाचार के किसी आरोप पर, याचिकाकर्ता की सेवानिवृत्ति के समय कोई विभागीय जाँच या तो शुरू की गई थी या वह अनुध्यान में थी। यह उत्तरवादीगण का भी पक्ष नहीं है कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध

कदाचार के किसी भी आरोप पर विभागीय जाँच का कोई विचार है। यह एक स्वीकृत स्थिति है कि याचिकाकर्ता को उसकी सेवानिवृत्ति से पहले या बाद में कोई आरोप-पत्र जारी नहीं किया गया है। 1976 के नियमों के नियम 9 के प्रावधान केवल उन्हीं मामलों में आकर्षित होंगे जहाँ शासकिय सेवक पर कदाचार का आरोप लगाया गया हो और जब यह आरोप हो कि उक्त कदाचार के परिणामस्वरूप शासन को आर्थिक हानि हुई है। वर्तमान मामला इस प्रकृति का नहीं है। अतः, नियम 9 के प्रावधान लागू नहीं होंगे। इस संबंध में दिया गया तर्क विधि की दृष्टि में भ्रामक है और इसलिए इसे खारिज किया जाता है।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

7. अगला महत्वपूर्ण विवाद्यक, जिसका इस न्यायालय द्वारा अवधारण किया जाना आवश्यक है, कि क्या किसी भी प्रकार के देय, जो 1976 के नियमों के नियम 65 या नियम 66 के तहत वसूली योग्य हैं, के लिए सुनवाई का कोई अवसर प्रदान किया जाना आवश्यक है। यह सत्य है कि न तो नियम 65 और न ही नियम 66 में ऐसे मामले में कारण बताओ नोटिस जारी करने और शासकीय सेवक को सुनवाई का अवसर प्रदान करने के संबंध में कोई विशिष्ट प्रावधान है, जहाँ शासकीय सेवक ऐसी वसूली के प्रति अपने दायित्व पर विवाद करता है। तथापि, इस प्रकार की जाने वाली कार्यवाही की प्रकृति ही ऐसी है कि परिणाम यह होगा कि यदि कोई राशि देय और वसूली योग्य पाई जाती है, तो शासकीय सेवक को उस राशि का भुगतान करना होगा

या उसे अपने देय सेवानिवृत्ति लाभों में से समायोजित कराना होगा। अतः, इसके सिविल परिणाम भुगतने पड़ते हैं। यदि नियम 65 या नियम 66 के तहत वसूली की स्थिति में यही परिणाम निकलना है, तो भले ही उन नियमों में कोई विशिष्ट प्रावधान न हो, शासन को प्रदत्त शक्ति की प्रकृति में ही यह अंतर्निहित है कि वसूली के संबंध में ऐसा कोई भी निर्णय लेने से पूर्व शासकीय सेवक की सुनवाई की जानी चाहिए। नियम इस उद्देश्य के लिए किसी प्रक्रिया का निर्धारण नहीं करते हैं। इसलिए, कम से कम एक नोटिस, जिससे शासकीय सेवक को यह सूचित किया जाए कि विविध अग्रिमों के विरुद्ध एक निश्चित राशि वसूली योग्य है, दिया जाना आवश्यक है और उसका उत्तर प्राप्त किया जाना चाहिए। तत्पश्चात, सक्षम प्राधिकारी के लिए यह आवश्यक है कि वह प्राप्त उत्तर पर स्वविवेक का प्रयोग करे और फिर इस मामले में उचित निर्णय ले कि क्या कोई वसूली बकाया है और यदि हाँ, तो वह कितनी राशि है जो देय और वसूली योग्य है। ऐसे निर्णय के पश्चात ही नियम 65 या नियम 66 के तहत वसूली की जा सकती है। ऐसा इसलिए है क्योंकि, सभी प्रकार की कार्रवाइयों में, जहाँ लोक शक्ति के प्रयोग का परिणाम सिविल परिणामों के रूप में निकलता है, वहाँ नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत लागू होते हैं, भले ही नियम लोक शक्ति के धारक पर ऐसा कर्तव्य आरोपित करते हों या नहीं। **मोहिंदर सिंह गिल विरूद्घ मुख्य चुनाव आयुक्त, नई दिल्ली व अन्य, एआईआर 1978 एस.सी. 850** के मामले में सुप्रीम कोर्ट द्वारा अभिनिर्धारित किया गया कि-

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

"**76.** हमें यह बताया गया है कि जहाँ कहीं भी संसद ने 'सुनवाई' का आशय रखा है, वहाँ अधिनियम और नियमों में स्पष्ट रूप से ऐसा कहा गया है, और अनुमानतः जहाँ इसे निर्दिष्ट नहीं किया गया है, वहाँ यह निष्प्रयोजन है। किंतु, ऐसा कोई अनिवार्य निष्कर्ष नहीं निकलता है। किसी विधि का मौन होना का प्रभाव उसे अपवर्जित करने वाला तब तक नहीं रखता, जब तक कि वह अनिवार्य निहितार्थ से उत्पन्न न हो। अनुच्छेद-324 व्यापक शक्तियाँ प्रदान करता है और जहाँ इसके प्रयोग से उम्मीदवारों पर कोई प्रत्यक्ष परिणाम निकलता है, वहाँ हमें इसमें कार्यात्मक दायित्वों को समाहित मानना चाहिए।"

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

इसके पश्चात **<u>मांगीलाल विरूद्घ मध्य प्रदेश राज्य, 2004 (2) एससीसी 447</u>** के मामले में, यह अभिनिर्धारित किया गया था -

"**10.** भले ही कोई विधि मौन हो तथा अधिनियम या उसके अंतर्गत बनाए गए नियमों में कोई स्पष्ट शब्द न हों, फिर भी उन पक्षों की बात सुनने की आवश्यकता को स्पष्ट रूप से बताने में कुछ भी गलत नहीं हो सकता है जिनके अधिकार और हित पारित किए जाने वाले आदेशों से प्रभावित होने की संभावना है और

निर्णय लेने से पहले एक निष्पक्ष प्रक्रिया का पालन करना अनिवार्य बनाना चाहिए, जब तक कि विधि अन्यथा प्रदान न करे। जब तक कि इसके विपरीत कोई स्पष्ट आदेश न हो, तब तक विधि के रिक्त स्थानों में नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों को पढ़ा जाना चाहिए। किसी भी प्रकार के प्रपत्र या प्रक्रिया को कभी भी किसी वादी के बचाव या पक्ष को प्रस्तुत करने से अपवर्जित करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। यहां तक कि प्रक्रियात्मक विधि में प्रावधान के अभाव में भी, न्यायिक या अर्ध-न्यायिक प्रकृति के प्रत्येक अधिकरण/न्यायालय में नैसर्गिक न्याय और निष्पक्षता की आवश्यकताओं को प्राप्त करने के लिए आवश्यक तौर-तरीकों को अपनाने की शक्ति निहित होती है, ताकि उनके कर्तव्यों का बेहतर और उचित निर्वहन सुनिश्चित किया जा सके। प्रक्रिया मुख्य रूप से नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों पर आधारित है, भले ही किसी विशेष परिस्थिति में इस संबंध में स्पष्ट प्रावधान द्वारा इसका कितना भी प्रयोग किया गया हो। यह हमेशा से एक प्रतिष्ठित सिद्धांत रहा है। जहाँ विधि नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के अनुपालन के बारे में मौन है, वहाँ विधि के ऐसे मौन का अर्थ नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का अनुपालन करना माना जाता है,

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

जहाँ पक्षों के पर्याप्त अधिकार काफी हद तक प्रभावित होते हैं। नैसर्गिक न्याय का अनुप्रयोग तब तक उपधारणात्मक रहता है, जब तक कि उसे विधि के स्पष्ट शब्दों या आवश्यक आशय द्वारा अपवर्जित न पाया जाए। {*देखें स्वदेशी कॉटन मिल्स विरूद्ध भारत संघ (1981) 1 एससीसी 664*}। इसका उद्देश्य न्याय सुनिश्चित करना या न्याय की विफलता को रोकना है। नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत विधि को प्रतिस्थापित नहीं करते, बल्कि उसके पूरक होते हैं। ये नियम केवल उन क्षेत्रों में लागू होते हैं जो किसी वैध रूप से बनाए गए विधि के अंतर्गत नहीं आते हैं। वे साध्य को प्राप्त करने का एक साधन हैं, अपने आप में साध्य नहीं। नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के कई पहलू हैं। उनमें से दो हैं: जिस मामले का सामना किया जाना है उसकी सूचना, और स्पष्टीकरण देने का अवसर।"

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

8. उपरोक्त निर्णयों में निर्धारित सिद्धांत स्पष्ट रूप से दर्शित करते हैं कि जहाँ कहीं भी सिविल परिणाम उत्पन्न होते हैं, वहाँ नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का अनुपालन अनिवार्य है, भले ही इस संबंध में विधि के उस प्रावधान में, जिसके तहत शक्ति का प्रयोग किया जा रहा है, उस संबंध में कोई विशिष्ट प्रावधान न हो। राज्य के

विद्वान अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता द्वारा दि.10/04/05 को प्रस्तुत किए गए बताए गए वचनबंध (अनुलग्नक आर/3) के बल पर सुनवाई के अवसर के बिना वसूली की कार्रवाई को उचित ठहराने का प्रयास किया। उस वचनबंध को उपरी तौर पर पढ़ने यह दर्शित होता है कि वह वचनबंध एकपक्षीय नहीं बल्कि द्विपक्षीय है। याचिकाकर्ता द्वारा दिया गया वचनबंध यह है कि वह उस राशि का भुगतान करने का वचन देता है जो उससे वसूली योग्य पाई जा सकती है और आगे यह भी कि, यदि वह मांग की तिथि से तीन महीने की अवधि के भीतर उसका भुगतान करने में विफल रहता है, तो वह राशि उससे भू-राजस्व की बकाया राशि के रूप में वसूल की जा सकती है। वचनबंध की पूर्ववर्ती कंडिका यह पूरी तरह स्पष्ट करती है कि ऐसा वचनबंध उस पृष्ठभूमि में प्राप्त किया गया है जहाँ कोई जाँच विचाराधीन है। वास्तव में, वचनबंध स्पष्ट रूप से शासन की इस सहमति को दर्ज करता है कि शासकीय सेवक द्वारा दी गई सेवाओं के लिए उसे देय पेंशन और उपदान की राशि, जाँच के पूरा होने की प्रत्याशा में प्रदान की जाए, ताकि शासन उस राशि का निर्धारण करने में सक्षम हो सके जो शासकीय सेवक से वसूली योग्य पाई जा सकती है। इसमें आगे यह भी दर्ज है कि शासकिय सेवक का यह दायित्व है कि वह जाँच में किए गए निर्धारण के परिणामस्वरूप स्वयं से वसूली योग्य उक्त देय राशि का भुगतान करे। अतः, यह पूरी तरह से एक अतिरंजित कथन है कि ऐसा वचनबंध शासन द्वारा राशि का निर्धारण किए बिना वसूली के लिए याचिकाकर्ता द्वारा दी गई सहमति के समान है। वचनबंध को कथित रूप से देय और वसूली योग्य

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

राशि के भुगतान के दायित्व की स्वीकारोक्ति नहीं कहा जा सकता, बल्कि यह केवल एक वचनबंध है कि एक बार जाँच में निर्धारण होने पर यदि इसे देय और वसूली योग्य पाया जाता है, तो यह तीन महीने की अवधि के भीतर देय होगा, जिसके उल्लंघन पर इसे भू-राजस्व की बकाया राशि के रूप में वसूल किया जाएगा। इसे किसी भी देय राशि से, और विशेष रूप से उपदान की राशि से, बिना किसी जाँच के राशि वसूल करने के वचनबंध के रूप में उपयोग नहीं किया जा सकता, वह भी तब, जब ऐसी जाँच में सुनवाई का अवसर प्रदान न किया गया हो।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

9. अतः, उपरोक्त विचार-विमर्श से अपरिहार्य निष्कर्ष निकलता है कि याचिकाकर्ता को सुनवाई का कोई अवसर प्रदान किए बिना ही उपदान से 96,029/- रुपये की राशि का समायोजन किया गया है। उत्तरवादीगण द्वारा उपदान से 96,029/- रुपये की समायोजित राशि को रोके रखने की कार्रवाई को, भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करने के कारण, अवैध और असंवैधानिक घोषित किया जाता है।

10. चूँकि राशि की वसूली समायोजन के माध्यम से पहले ही की जा चुकी है, अतः उक्त राशि आज की तिथि से दो माह की अवधि के भीतर याचिकाकर्ता के उपदान कोष में जमा कर दी जाएगी। तथापि, ऊपर जो निर्धारित किया गया है उसके आलोक

में, उत्तरवादी कथित रूप से देय और वसूली योग्य राशि के विरुद्ध याचिकाकर्ता को कारण बताओ नोटिस देने के लिए स्वतंत्र होंगे और याचिकाकर्ता से उत्तर प्राप्त करने के बाद, विधि के अनुसार मामले का निर्णय ले सकेंगे और 1976 के नियमों के नियम 65 के अनुसार उचित वसूली कर सकेंगे।

11. यदि कोई राशि, जो इस याचिका के लंबित रहने दौरान रुकी हुई है, जिसमें पेंशन मामले का अंतिम निराकरण भी शामिल है, उसका भुगतान भी किया जाएगा और पूरी प्रक्रिया बिना किसी अतिरिक्त विलंब के पूरी की जाएगी, क्योंकि याचिकाकर्ता वर्ष 2005 में सेवानिवृत्त हुए हैं।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

12. तदनुसार याचिका स्वीकार की जाती है। वाद व्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया जा रहा है।

हस्ताक्षर

श्री मनीन्द्र मोहन श्रीवास्तव

न्यायमूर्ति

अस्वीकरणः हिन्दी भाषा में निर्णय का अनुवाद पक्षकारों के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा। समस्त कार्यालयीन एवं व्यवहारिक प्रयोजनों हेतु **निर्णय का अंग्रेजी स्वरुप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।**

Translated By Adv Neeta Verma

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur